ममुद्रं काममभिजयेमेति। ता एतमङ्गीऽषाढाभ्यश्चरं निरव-पन्। ततो वै ताः समुद्रं काममभ्यजयन्। समुद्रश्च वै काममभिजयित। य एतेन इविषा यजते। य उ चैनदेवं वेद। सीऽच जुहोति। श्रद्धाः खाहाऽषाढाभ्यः खाहा। समुद्राय खाहा कामाय खाहा। श्रभिजित्ये खाहेति" [8] इति। योऽयं 'समुद्रः'जखराशिः, तमेतं जखराशिं 'काममभिजयेय' खेच्चया वशीकुर्मः, 'इति' एवं, देवतानां कामना। यज-मानस्वच 'समुद्रं', श्रतिप्रभुलेन समुद्रसदृशं, 'कामम्' श्रभि-खितायं, श्रभिजयित। स्पष्टमन्यत्॥

श्रम पश्चमखेष्ठिं विधत्ते। "विश्वे वै देवा श्रकामयना। श्रमपत्रव्यं जयेमेति। त एतं विश्वेभ्या देवेभ्याऽषाढाभ्यश्चरं नि-रवपन्। तता वै तेनपत्रव्यमभ्यत्रवन्। श्रमपत्रव्यप् इ वै जयिता व एतेन इविषा यजते। य उ नैनदेवं वेद। सीऽत्र जुद्दीति। विश्वेभ्या देवेभ्यः खाद्दाऽषाढाभ्यः खाद्दा। श्रमपत्रव्याय खाद्दाभित्रित्ये खाद्देति" [५] दति। जेतुमश्रकाः श्रनुः श्रमपत्रव्यः, तं 'जयेमेति', विश्वेषां देवानां कामना, तखा जेतुमश्रकाः श्रनोर्भमानी देवाऽप्यनपत्रव्यः। तखा जयाभिन्मानी देवः 'जितिः'। स्रष्टमन्यत्॥

त्रय षष्टखेष्टिं विधत्ते। "ब्रह्म वा त्रकामयत। ब्रह्मलोक-मभिजयेयमिति। तदेतं ब्रह्मणेऽभिजिते चहं निर्वपत्। तती वै तद्रह्मलोकमभ्यजयत्। ब्रह्मलोकष्ट्र इ वा त्रभिजयति। य एतेन इविषा यजते। य उ चैनदेवं वेद। सोऽत्र जुहोति।